IJAER/ May-June 2023/Volume-12/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

# गुलाम वंश कालीन भारत में मनोरंजन के साधन : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ नीरज रूवाली डी.लिट्
इतिहास विभाग
एम.बी.पी.जी.कॉलेज हल्द्वानी (नैनीताल)

निर्मला बिष्ट
शोधार्थी
एम.बी.पी.जी.कॉलेज हल्द्वानी (नैनीताल)

मध्यकालीन भारत में निरन्तर विदेषी तुर्क आक्रमणों उपरान्त स्थायित्व की शुरुआत सन् 1206 ई0 में सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक के राज्योहण से हुई। इस समय मुस्लिम व भारतीय संस्कृति के मेल से भारत वर्ष में एक सर्वथा पृथक संस्कृति का जन्म हुआ।

प्राचीनकाल की भांति यद्यपि जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों एवं आदर्शों का पतन हो चुका था एवं मनोरंजन के प्रत्येक साधन में विलासिता का प्रवेश हो चुका था, तथापि व्यक्तियों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं व्यक्तिगत प्रास्थिति एवं तत्सम्बन्धी मान्यताओं के अनुरूप उनके मनोरंजन के अनेक साधन थे, जिनका उपयोग तत्कालीन समाज द्वारा किया जाता था। इन साधनों की जानकारी हमें समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थों व विदेशी पर्यटकों की डायरियों में यदा–कदा प्राप्त होती है। भारतीय एवं मुस्लिमों के परस्पर सम्पर्क से जीवन शैली एवं पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन हुए। जहाँ मनोरंजन के कुछ नए प्रकार प्रचलित हुए, जो तुर्क अपने साथ लेकर आये थे, वहीं प्रचलित मनोरंजन के साधनों में भी स्वरूप परिवर्तन हुआ।

फतवा–ए–जहाँदारी में वर्णित है ***–"बादशाह के गुणों व अवगुणों का प्रभाव उसकी प्रजा पर पड़ता है। चाहे वह आदेश दे या नहीं दे। यदि बादशाह किसी कला से विशेष रुचि रखता है, तो राज्य के समस्त विशेष व्यक्ति उस कला में निपुणता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। ग ग ग ग यदि बादशाह को सुलेख में रुचि है, तो समस्त विशेष व्यक्ति सुलेख सीखने लगते हैं। यदि बादशाह को कविता में रुचि होती है, तो सभी कविता करने लगते हैं। ..... इसी प्रकार अवगुणों के विषय में भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है। "***[1]

कतिपय यही स्थिति तत्कालीन समाज में प्रचलित मनोंरंजन के साधनों के विषय में भी विद्यमान थी। शासक वर्ग द्वारा अपने आमोद प्रमोद हेतु प्रयुक्त किये गये साधनों का प्रयोग आम जन द्वारा भी अपनी क्षमतानुसार किया जाता था। तद्नुरूप ही यहां पर सल्तनतकालीन भारत के गुलाम वंषकालीन भारत में प्रचलित मनोरंजन के साधनों का वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

1. **संगीत** – संगीत मनोरंजन का सर्वप्रमुख एवं सर्वसुलभ साधन था। चूंकि इस्लाम में स्वर संगीत एवं नृत्य इत्यादि निषेध थे अतः प्रवेश एवं आक्रमण काल में ही भारतीय संगीत की पुस्तकें इत्यादि नष्ट करवा दी गयी थीं एवं इस समय संगीत त्रयी अर्थात 'गायन, नाटक, नृत्य' का कोई भी साहित्यिक एवं शास्त्रीय विकास नहीं हुआ। संगीत का वैदिक स्वरूप यद्यपि नष्ट हो चुका था, किन्तु किसी न किसी रूप में संगीत आम जनजीवन एवं दरबारी जीवन का हिस्सा बना रहा क्योंकि यह सर्वसुलभ था, किन्तु काव्य इत्यादि के प्रति समर्पण मात्र उपयोगितावादी दृष्टिकोण तक ही सीमित था।[2] ललित कलाओं में भी स्थापत्य को ही प्रमुखता प्रदान की गयी एवं इस अवधि में संगीत व नृत्य की व्यवस्था मात्र दैनिक मनोरंजन हेतु ही थी, बौद्धिकता आधारित नहीं।

संगीत का एक अद्भुत आकर्षण होता है, इसी कारण विधिक व धार्मिक रूप से इस्लाम में संगीत निषेधित होने के उपरान्त भी यह तत्कालीन दैनिक जीवन, उत्सवों एवं त्योहारों का एक महत्वपूर्ण भाग बन गया था।रूढ़िवादी, परम्परागत एवं कट्टर, कुछ मुस्लिम वर्ग को छोड़कर शेष तीन चौथाई मुसलमानों व भारतीय नागरिकों का वर्ग इन कलाओं में रुचि लेता रहा, उन्हें प्रोत्साहन देकर मनोरंजन करता रहा। कोई भी त्योहार या जश्न या उत्सव–संस्कार इत्यादि बिना संगीत–नृत्य के सम्भव ही न था। यद्यपि शैली एवं वाद्य यंत्रों इत्यादि में स्वरूप परिवर्तन अवश्य हो गया था।

शाही दरबारों में राज्यारोहण, शत्रु पर विजय प्राप्ति एवं विशेष अवसरों पर 'जश्न' का आयोजन किया जाता था, जिनमें 'परी के समान सुन्दर नर्तकियों' कस्तूरी की सुगंध वाली मदिरा, मदिरा के संगमरमरी प्यालों के मध्य नृत्य एवं गीत का आनंद लिया जाता था।[3] संगीत व नृत्यरत युवतियाँ समय के साथ मदिरापान की तरह अपरिहार्य हो गया एवं यह व्यक्तिगत मनोरंजन से दरबारी मनोरंजन में परिवर्तित हो गया।

तद्समय वाद्य यंत्रों में प्रमुख 'नौबत' का उल्लेख सभी समकालीन ग्रन्थों में बारम्बार होता है। नौबत अन्तर्गत नगाड़ा, तुरही, बिगुल, झाँझ, बाँसुरी आदि बाजे सम्मिलित थे। यह बादशाह के प्रभुत्व की द्योतक थी तथा बिना बादशाह की अनुमति के किसी भी स्थानीय अमीर द्वारा इसका उपयोग करना निषेध था। विभिन्न विजय के अवसरों, उत्सव, इत्यादि पर इसका वादन केवल बादशाह की उपस्थिति में अथवा राजधानी में ही किया जा सकता थी। यह प्रायः एक दिवस में पाँच बार बजायी जाती थी। चार बार दिन में व एक बार रात में। **चचनामा** में वर्णन है कि यह प्राचीन भारतीय प्रथा थी। पंज नौबत का मध्यकालीन भारतीय साहित्य में कई स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता है। तबकाते नासिरी में वर्णित है कि ग्वालियर के किले की विजय के दौरान एक फर्लांग की दूरी पर इल्तुतमिश के सैन्य शिविर लगे थे, जहाँ दिन में पाँच बार नौबत बजा करती थी।[4]

स्पष्ट है कि नौबत बादशाह के एकाधिकार विजय व प्रभुत्व के प्रतीक चिह्न के रूप में प्रयोग की जाती थी। जब भी किसी अमीर इक्तादार इत्यादि द्वारा स्वयं को प्रभुत्व सम्पन्न व स्वतंत्र प्रदर्शित करने की मंशा होती, वह अपने द्वार पर नौबतें बजवाना व हाथी रखना प्रारम्भ कर देता था। मु0 बहरामशाह के समय में ऐतगीन [5] एवं सुल्तान अलाउद्दीन मसदशाह के समय में निजामुलमुल्क मुहज्जबुद्दीन [6] ने अपने प्रभुत्व एवं स्वतंत्रता प्रदर्शित करने के लिए नौबतें बजवानी शुरू कर दी थी।

इल्तुतमिश का पुत्र सुल्तान रुकनुद्दीन अधिकतर भोग विलास की महफिलों में ग्रस्त रहता था तथा अधिकांश इनाम व खिलअत गायकों, विदूषकों इत्यादि को वितरित कर देता था।

सल्तनतकालीन संगीत में सुल्तान बलबन का काल महत्वपूर्ण है। सुल्तान शम्सुद्दीन के साथी उमराव से बलबन को फारस के दरबारों में आयोजित होने वाली सभाओं व उत्सवों का वर्णन प्राप्त हुआ था एवं बलबन उस वर्णन से अत्यधिक प्रभावित हुआ था। उसी तर्ज पर बलबन के दरबार में होने वाले 'जश्नों' की सभाओं की सजावट के लिए दरबार में भव्यता का प्रदर्शन किया जाता था। अमूल्य अलंकृत फर्श, रंग बिरंगे कपड़े, सोने–चाँदी के बर्तन, झाड़–फानूस इत्यादि से सजावट कर समारोह को भव्य बनाया जाता था। जुहर (दोपहर पश्चात) एवं असर (संध्या–पूर्व) काल की नमाज के मध्य का समयकाल जश्न के लिए निर्धारित रहता था।[7] जश्न की सभाओं में संगीत का आयोजन होता था। कवि सुल्तान की प्रशंसा में कवितायें पढ़ते थे। उक्त जश्न की सजावट की चर्चा कई दिनों तक विद्वान करते रहते थे। अपनी विलासपूर्ण सभाओं में शोभा वृद्धि के लिए बलबन द्वारा मृदुभाषी मित्रों, नदीमों सुस्वर में पुस्तक पाठ करने वालों तथा नर्तकियों को नौकर रखता था। [8],

अपने मलिक और खान होने के समय में सुल्तान बलबन मदिरापान व सभा करने में विशेष रुचि रखता था। रंग सभाओं की शोभा वृद्धि हेतु मृदुभाषी नदमा, प्रसिद्ध गायकों इत्यादि को सेवा में रखता व पोषण करता किन्तु बादशाही प्राप्त होने के बाद उसने इस्लाम में निषिद्ध होने के कारण उक्त कर्मों को त्याग दिया।[9]

मेवातियों के सफाए उपरान्त वह जब तीन वर्ष उपरान्त दिल्ली शहर में पुनः वापिस लौटा, तो बलबन के स्वागत में घर–घर में प्रियजनों की वापसी पर खुशियाँ मनाये जाने व नाच रंग की महफिलें आयोजित किये जाने का विवरण बरनी ने किया है।[10] बलबन के दरबारी मलिक उसके चचेरे भाई मलिक अलाउद्दीन खिमिशली खाँ के नदीमे खास ख्वाजा शम्स मुईन ने अलाउद्दीन की प्रशस्ति में एक कविता लिखी व इसमें से एक गजल अलग कर बलबन के दरबारी गायकों को दे दी, जिन्होंने उक्त गजल व कविता कंठस्थ कर ली। गायकों को पुरस्कार देकर भेज दिया गया जिसे सुल्तान के दरबार में नौरोज के उत्सव के समय सुल्तान के गायकों ने उक्त कविता गजल के साथ गायन कर प्रस्तुत किया गया–

*"शह अलाउद्दीन अलग मतलग मुअज्जम बारबाक।*
*पूर कुशली खाँ मुअज्जम खुसरो–ए–रूए–जमीन।।"*

इस कविता में अलाउद्दीन की प्रशंसा करते हुए उसे पृथ्वी का बादशाह बताया गया था।[11] कविता से प्रसन्न होकर अलाउद्दीन खिषमली खां ने अपने अस्तबल के सभी घोड़े ख्वाजा शम्स मुईन को देकर गायकों को दस हजार तनके पुरस्कार में दिये।

यह भी स्पष्ट होता है कि इस काल में कविता व संगीत को सम्बद्ध कर दिये जाने से दोनों में ही स्फूर्ति उत्पन्न हो गयी। बिना कविता के संगीत या गायन तथा बिना गायन के कविता पाठ सम्भव नहीं था। कवि अपनी कविताओं को गा–गाकर सुनाने में रुचि लेने लगे, जिससे श्रोता आत्म–विभोर हो जाते थे। अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में छन्द–रूवाईयाँ रचित कर उन्हें गाकर सुनाया जाता था एवं पुरस्कार प्राप्त किये जाते थे। मदिरा गोष्ठियों, दरबार या विशिष्ट त्योहार पर संगीत के साथ काव्य–पाठ होने लगा। नवयुवक व युवतियाँ साकी के रूप में मदिरापान कराते व उनके साथ संगीत व नृत्य की गोष्ठियाँ आयोजित होती थीं।[12] गायकों एवं नृत्य करने वालों में सुन्दर युवतियों का विशेष महत्व था। सुन्दर नैन–नक्श, हाव–भाव से परिपूर्ण युवतियाँ व सुन्दरियों को गाना–बजाना, गजल पढ़ना इत्यादि सिखाया जाता था। इसके साथ ही हिन्दुस्तानी दास–दासियों को भी गाना सिखाया जाता था, जो दक्ष एवं कुशल गायक फारसी एवं हिन्दी गाने गाते थे। सुल्तान की प्रशंसा में गज़लें, कौल, **हुव** तथा किसानी लिखे जाते थे।[13]

बलबन के पुत्र एवं मुल्तान सूबे के प्रभारी शाहजादा मुहम्मद के शासन काल में मुल्तान भी संगीत का केन्द्र बन गया था। जिसकी राजसभा में अनेक कलाकार थे। उसके नदीम *'शाहनामा', 'दीवाने सनाई', 'दीवाने खाकानी'* व *'शेख निजामी'* का खमसा दरबार में पढ़ा करते थे, जिसके छन्दों पर विद्वान वाद–विवाद किया करते थे। अमीर खुसरो व अमीर हसन शाहजादा मुहम्मद के दरबारी थे। अमीर खुसरों ने पाँच वर्ष तक उसके दरबार में सेवा कर नदीमों के साथ वेतन व ईनाम प्राप्त किये थे, जिनकी गद्य व पद्य की प्रतिभा के कारण शाहजादा मुहम्मद ने खुसरो को विशेष सम्मान एवं सबसे उत्तम वस्त्र व ईनाम किए।[14] सुल्तान प्रसन्न होकर गायकों व अन्य कलाकारों को अतिशय दान भी देते थे। इस कारण कवि एवं संगीतकार अपने आश्रयदाता की मृत्यु पर अत्यधिक दुःखी होते थे। जैसा कि अमीर खुसरो एवं अमीर हसन द्वारा शाहजादे मुहम्मद की असामयिक मृत्यु पर दुःखी होकर उन्हें स्मरण कर कतिपय अवसरों पर कहा जाता था कि ***''यदि हमारा एवं अन्य कलाकारों का सौभाग्य होता, तो खान शहीद जीवित रहता, बलबन के राज सिंहासन पर आरूढ़ होता एवं हमें तथा अन्य कलाकारों को सोने में डुबा देता। पर बड़े–बड़े कलाकारों के पास भाग्य की कमी होती है।''***[15]

बलबन का उत्तराधिकारी उसका पौत्र कैकुबाद हुआ। यह उत्कृष्ट चरित्र एवं सदाचारी स्वभाव का था। राज्यारोहण के समय बलबन की देख–रेख में कठोर नियंत्रण में बालक कैकुबाद का पालन–पोषण हुआ था, जिसे भोग विलास की रुचि से अत्यधिक दूर रखा गया था, किन्तु सुल्तान बनते ही उसकी विलास करने की इच्छायें बलवती हो उठी। बलबन के समय तक संगीत की गोष्ठियाँ एवं संगीत शरिया के अन्तर्गत सीमा तक ही सीमित थी, किन्तु कैकुबाद के गद्दी सम्भालते ही अनियंत्रित रूप से महफिलें पुनः प्रारम्भ हो गयी। बलबन के समय तक हताश एवं अपमानित होकर हाशिए पर पड़े विदूषक–गायक इत्यादि पुनः अपना–अपना कार्य करने लगे।[16]

हर क्षेत्र से संगीतकार, हँसोड़ सुन्दर और भांडों का दरबार में प्रवेष हो गया था। मदिरालय आबाद हो गये एवं मदिरा का मूल्य दस गुणा बढ़ गया।[17] बरनी ने वर्णन किया है कि कैकुबाद के समय में प्रत्येक दीवाल की छाया से रमणियाँ दिखने लगीं तथा प्रत्येक कोठे से कोई न कोई सुन्दरी अपनी सुन्दर छवि प्रदर्शित करने लगी। प्रत्येक गली–कूचे में सुमधुर स्वर वाले और ग़ज़ल गायक उत्पन्न हो गये तथा प्रत्येक मुहल्ले से गाने बजाने की आवाजें आने लगीं।[18] जिया झज्जी और हिसाम दरवेश, अपने समय के विनोदी ,मृदुभाषी ,अद्वितीय नदीम और आश्चर्यजनक कथावाचक थे। ये सुल्तान की विशेष सभा के 'नदीम' नियुक्त हुए। सुल्तान कैकुबाद के सम्मुख चुटकुला या परिहास सुनाने वालों को धन, सम्पत्ति, खिलअत और घोड़े प्रदान किये जाते थे।[19] सर्वसाधारण एवं विशेष व्यक्तियों सभी के हृदय पुनः मदिरापान, रमणियों, गायकों और विदूषकों की ओर आकर्षित होने लगे।

यमुना नदी तट पर किलोखड़ी में बनाये गये अद्वितीय भवन व उपवन में मुइज्जुद्दीन कैकुबाद अपने मालिकों, अमीरों, दरबारी कार्मिकों, इत्यादि को लेकर निवास करता था जहां देश के चारों ओर से गायक, सुन्दर युवतियाँ चरण, सुमधुर स्वर वाले तथा मसखरे, भांड इत्यादि दरबार में पहुँचने लगे व प्रत्येक जगह आबादी ही आबादी दिखायी देने लगी।प्रतिष्ठित व गणमान्य व्यक्ति अपना सारा समय मदिरापान करने, महफिलें सजाने, लोगों से बाजी लगाने, गाना सुनने, जुआ खेलने इत्यादि में व्यतीत करते थे।[20] सुल्तान की महफिल में मधुर तानें सुनाने वाली सुन्दरियाँ सदैव उपस्थित रहती थी। उनकी छवि व उनके स्वर को सुनकर लोग बेहोश हो जाते थे। भंग व रवाब की आवाजें, कमांचे के स्वर, मिसकल व बाँसुरी की आवाजों एवं तम्बूरा वादन से सम्पूर्ण वातावरण चमत्कृत हो उठता था।[21] चग और रवाब को विशेष प्रवीणता से तैयार किया जाना एवं उस भेंट के दौरान आयोजित महफिल में संगीत व नृत्य का प्रबन्ध होने तथा गायकों की मधुर तानें, नर्तकियों के नृत्य से समारोह की शोभा में वृद्धि होने की जानकारी किरानुस्सादैन के विवरण से प्राप्त होती है।[22]

सुल्तान कैकुबाद के अवध से दिल्ली वापसी तक के सफर में स्थान स्थान पर विलास की महफिलें आयोजित की गयी थीं। इस दौरान प्रत्येक मंजिल पर नयी महफिल सजायी जाती थी। कैकुबाद को आकर्षित करने के लिए उसकी अवध से देहली की यात्रा के पथ में स्थान–स्थान पर सुन्दर युवतियाँ, रमणियाँ सुल्तान की सवारी पहुँचने पर अपनी छवि का प्रदर्शन करती हुई गाना गाती थीं।[23] कई नर्तक मण्डलियाँ होती थीं व प्रत्येक मण्डली (तायफा) बारी–बारी से अपनी कला का प्रदर्शन करती, जिन पर मुग्ध होकर सुल्तान बीस–तीस हजार तनके उन तवायफों को प्रदान कर देता था। तारीख ए फिरोजषाही में बरनी ने वर्णन किया है कि *''जिस मंजिल पर भी सुल्तान का शिविर लगता था, शिविर के चारों ओर से सुन्दरियों की मधुर तानें सुनाई देने लगती थी। जिनकी हृदयाकर्षक वाणी से तृतीय आसमान पर स्थित जुहरा (शुक्र तारा) स्तब्ध हो जाता था। चग (ढंफ के प्रकार का बाजा), रवाब (सारंगी के प्रकार का बाजा), कमांचे (कमान के प्रकार का बाजा), मिसकल (वीणा के प्रकार का बाजा), बाँसुरी एवं तम्बूरा (सितार के प्रकार का बाजा) के वादन से पक्षी हवा से नीचे उतर गये व वन पशु मूर्छित हो गये। मधुर गायकों के गायन व नर्तकियों के नृत्य–हावभाव इत्यादि से सैनिक, लश्कर के वीर योद्धा, पागल व आसक्त स्वभाव के युवक दीवाने, आशिक मिजाज इत्यादि अपना सिर फोड़ डालते व कपड़े फाड़ डालते।''* [24]

इस प्रकार समस्त धन सम्पत्ति व बादशाह की एकत्रित राजकोष की सम्पत्ति इन गायकों इत्यादि में वितरित कर दी। दिल्ली पहुँचने पर पुनः पुराने व नये गायक तथा रमणीक नर्तकियाँ संगीत व गायन के लिये कुव्वों ( बड़े स्वागत द्वार) पर पहुँच गयी, जहाँ देहली शहरवासियों ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति इन पर न्यौछावर कर दी।

उन महफिलों की भव्यता एवं महफिलों में बेहतरीन गजल गायक, नर्तकियों द्वारा की जाने वाली प्रस्तुतियों का स्मरण बरनी द्वारा अपने वृद्धावस्था में किया है, जिसमें उसने उन गज़लों को *'पागल बना देने वाली'* कहा है।[25]

फखे मुदब्बिर ने अपने ग्रन्थ 'आदाबुल हर्ब वश्शुजाअत' में उत्तम वजीर के लिए कवि व कविताओं के गुण का ज्ञान रखना आवश्यक माना है।[26] 'वस्तुल हयात' पुस्तक में अमीर खुसरो द्वारा शहजादा मुहम्मद तथा सुल्तान बल्बन की प्रशंसा में कसीदे लिखे गये हैं।[27]

कवियों को किसी अवसर विशेष के सम्बन्ध में भी कविता लिखे जाने हेतु बादशाह द्वारा कहा जाता था। कैकुबाद ने अपने पिता से भेंट के सम्बन्ध में एक कविता लिखने के लिए खुसरो को निर्देष दिए थे जिस पर खुसरों ने छः माह में कविता तैयार की, जिसमें 3244 छन्द लिखे गये थे। उक्त कविता लेखन के बदले बादशाह ने उसे अत्यधिक ईनाम दिया। कविता का एक छन्द निम्नवत् है –

***"कविता की इति हुई ईश्वर ने इसे ऐसा बनाया है कि सभी इसे स्वीकार करते हैं।***
***ईश्वर करे कि यह कयामत तक शेष रहे और इसका अन्त न हो।"***[28]

संगीत का आध्यात्मिक रूप भी प्रचलन में था। ***'समा'***, सूफी संतों की ईश्वर के लिए गीत व नृत्य की महफिलें थीं। जहां बादशाह, अमीरों व अन्य वर्गों की सामान्य गोष्ठियों, जिनमें चुटकुले, मदिरापान, रमणियाँ, चौसर, नृत्य–गीत इत्यादि आयोजित होते थे एवं भोग विलास की प्रचुरता थी वहीं समा पूर्णतः विशुद्ध आध्यात्मिक संगीत–नृत्य की महफिलें थीं। इसका उद्देश्य मस्तिष्क को परमानन्द की स्थिति में लाना था।[29] इसी प्रकार की महफिल 'समा' में शहज़ादे मुहम्मद द्वारा शेख उस्मान व हजरत बहाउद्दीन जकरिया (सुहरावर्दी सन्त) के पुत्र शेख कदवा को आमंत्रित किया गया, जिसमें अरबी गजलें गायीं गयीं। सभी दरवेश मस्ती में नृत्य करने लगे। वहीं समा की पूर्ण अवधि के दौरान शहजादा मुहम्मद हाथ बाँधे फूट–फूटकर रोता रहा। वहीं जब शेख सादी शहजादे द्वारा दो बार आमंत्रण दिये जाने उपरान्त भी मुल्तान न आ सके, तो शेख ने दोनों ही अवसरों पर अपने हाथ से लिखी गज़लों की पुस्तक शहजादा को प्रेषित की थी ।[30]

फुतुहूस्सलातीन के अनुसार कैकुबाद के समय में नागौर के हमीदुद्दीन सूफी संत दिल्ली आये थे, जो दिन रात समा सुना करते थे।[31]

उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हे कि इस कालखण्ड में संगीत मात्र विलास की एक सामग्री बन गया था, जिसे भोग विलास की महफिलों में प्रदर्शित किया जाता था। शास्त्रीय गरिमा से दूर, संगीत–नृत्य हर वर्ग के मनोरंजन हेतु सुलभ व सस्ता साधन था।

2. **<u>आखेट</u>** – मनोरंजन हेतु आखेट के सम्मुख सभी खेल उत्तेजना व उद्दीपन में निम्नतर थे। तुर्कों के भारत आगमन से पूर्व ही अरबों ने शिकारी पशु–पक्षियों के अध्ययन और उनकी उत्पत्ति व परवरिश के सम्बन्ध में विशाल साहित्य का संकलन किया था। जिस प्रकार तुर्क अपने साथ फारस व ईरानी साम्राज्य की अन्य परम्पराओं को भारत लाये थे, उसी प्रकार आखेट की ईरानी शासकों की परम्परायें, उपकरण व तौर–तरीके भी भारत वर्ष में लाये।[32]

कुतुबुद्दीन ऐबक तथा प्रारम्भिक सभी तुर्क आखेट के शौकीन थे। तद्समय तक आखेट मनोरंजन के साथ–साथ सेना को शारीरिक रूप से सक्रिय रखने एवं युद्ध अभ्यास का माध्यम माना जाता था। तारीखे फिरोजशाही में बलबन के विषय में हलाक् खाँ का कथन है कि ***"बलबन अनुभवी बादशाह है। वह देखने में तो शिकार के लिए जाता है, किन्तु इस असंख्य सवारी का ध्येय यह है कि खानों, मलिकों व राजधानी की सेना (हश्मे हाशिया) को अधिकाधिक अभ्यास होता रहे, घोड़े पसीने से तरबतर होते रहें, जिससे घमासान युद्ध तथा सख्त लड़ाई में उनसे काहिली व असावधानी न प्रकट हो। जब सेना को दौड़–धूप की आदत रहती है और घोड़े दौड़ने में पसीना–पसीना रहते हैं, तो रण क्षेत्र में शत्रु उन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। बादशाह अर्थात् बलबन शिकार नहीं खेलता, अपितु अपने राज्य की रक्षा करता है।"*** [33]

आखेट हेतु पृथक से एक विभाग गठित था, जिसका प्रबन्धन अमीर–ए–शिकार द्वारा किया जाता था। 'शिकारगाह' शिकार हेतु प्रयुक्त होने वाले स्थान को कहा जाता था।[44] तबकाते नासिरों के वर्णन के अनुसार सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक ने इल्तुतमिश की योग्यता व समझ–बूझ को देखते हुए उसे अमीर–ए–शिकार के पद पर नियुक्त किया था।[34] अमीरे शिकार राज्य के प्रमुख अधिकारियों में गिना जाता था, जिसका मुख्य कार्य सुल्तान के लिए शिकार की व्यवस्था करना था। शिकार का प्रबन्ध करने के लिए तबलबाज (नगाड़ा पीटने वाले), कल्ब–ए–मुअल्लम (शिकारी कुत्ते), यूजबान (तेंदुआ और तेहई रखने वाले) सुल्तान के शिकारी होते थे।[35] इल्तुतमिश द्वारा मलिक हिन्दू खाँ मुबारक की नियुक्ति 'यूजबान' के पद पर की गयी।[36]

सुल्तान अलाउद्दीन मसऊदशाह (1242–1246 ई0) के राज्य व्यवस्था की उपेक्षा कर शिकार में तल्लीन रहने का विवरण तबकाते नासिरी में प्राप्त होता है।[37](आदि तुर्क, पृ0 43) मलिक कुरेत खाँ को अश्वारोहण एवं धनुर्विद्या में निपुण बताते हुए तबकाते नासिरी में वर्णित है कि ***"मृगया में कोई जन्तु उसके बाण से बच नहीं पाता था। वह शिकारगाह में वह अपने साथ चीते, बाज तथा शिकारी कुत्ते नहीं ले जाता था, बल्कि मात्र तीर से शिकार करता था। शिकार का पता चलते ही सर्वप्रथम वहाँ पहुँचता था।"*** [38]

शिकार हेतु सुल्तान अपने दल को, जिसमें शिकारदार (शिकार का प्रबन्ध करने वाले), चिड़ीमार, तबलबाज, इत्यादि के साथ दास, घुड़सवार, इत्यादि थे, को भी अपने साथ ले जाता था। शीत ऋतु के चार माह शिकार हेतु सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे।[39] बलबन जब शिकार खेलने हेतु रवाना होता, तो एक हजार पुराने सवार , जिनमें सुल्तान प्रत्येक को जानता था, एक हजार पुराने दास, जिनमें पायक व धनुर्धारी सभी सम्मिलित थे और जो सुल्तान के विश्वासपात्र थे, ले जाता था जो सम्पूर्ण मृगया की अवधि में बलबन के साथ रहते थे। भोजन की व्यवस्था सुल्तान के दस्तरबान (रसोई) से होती थी।[40]

धार्मिक झुकाव, शासकीय कार्यों में व्यस्तता एवं राज्य व्यवस्था में संलग्न एवं व्यस्त होने के उपरान्त भी बलबन शिकार को विशेष महत्व देता था। आखेट हेतु शीतकाल की उसे सदैव प्रतीक्षा रहती थी। उसकी आज्ञा थी कि हवालिये (दिल्ली शहर के आस–पास के कस्बे) शहर के दस–बीस कोस तक के शिकारगाहों व मैदानों की रक्षा की जाए एवं वहाँ कोई भी अन्य व्यक्ति शिकार न खेलने पाये। अपने खान पद के व सुल्तान के रूप में ,दोनों ही कार्यकालों में बलबन शिकार पर विशेष ध्यान देता था। बड़े–बड़े शिकारदारों को विशेष सम्मान प्राप्त था। बाज द्वारा शिकार को विशेष महत्व दिया जाता था। इस हेतु शिकरेखान (बाज रखे जाने का स्थान) में अनेक दक्ष शिकरे (बाज) थे। अत्यधिक संख्या में चिड़ीमार नौकर व शिकरेदार रखे गये थे। कुश्के लाल (लाल राजभवन) से बलबन जाड़े के दिनों में रात्रि के अन्तिम प्रहर में रवाना होता व रेवाड़ी व उसके आगे तक शिकार करता, बाजों को उड़ाता। वापसी तिहाई या आधी रात को शहर में होती, तब ढोल पीटकर प्रवेश किया जाता।[41]

वास्तव में शिकारगाह एक असुरक्षित स्थान होता था, जहाँ षड़यंत्रकारी एवं शत्रुओं के द्वारा बादषाह की हत्या किये जाने की आषंका रहती थी। अतः बादषाह के नगर किले से बाहर निकलकर शिकार करने के दौरान पर्याप्त सुरक्षा भी साथ में रखी जाती थी।[42] बब्बर शेर, चीते की खाल एवं शिकारी कुत्ते व बाज परस्पर राजकीय उपहार के रूप में भी आदान–प्रदान किये जाते थे। [43]

स्पष्ट है कि गुलाम वंषीय बादशाहों ने मनोरंजन को सैन्य अभ्यास के साथ संयुक्त कर दिया, जिसकी परिणति आखेट/शिकार के रूप में सम्मुख आयी।[44]

**3– <u>पोलो एवं घुड़दौड़ इत्यादि</u>** – उस युग में मैदानी खेलों में प्रचलित खेलों के रूप में अति शानदार खेल पोलो एवं घुड़दौड़ का नाम लिया जा सकता हैं। पोलो के उद्भव चिह्न फारस के ससानी वंश में मिलते हैं, जिसे तुर्कों द्वारा अपना लिया गया एवं इस प्रकार शीघ्र ही भारत के सभी वर्गों में यह खेल खेला जाने लगा।[45] पोलो का खेल आज ही के समान खेला जाता था।[46] ऐबक पोलो खेलने का अत्यधिक शौकीन था। उसकी मृत्यु भी पोलो खेलते समय घोड़े से गिर जाने से हुई थी। इस दौरान घोड़ा ऐबक पर गिर गया, जिसकी काठी के सामने का भाग ऐबक के सीने में लगा और उसकी मृत्यु हो गयी।[47]

घुड़दौड़ भी उतनी ही लोकप्रिय थी जिस पर पैगम्बर के आशीर्वाद होने की मान्यता थी।घोड़े उत्पन्न करने से सम्बन्धित वर्णन **'अदश–उल–हर्ब'** पुस्तक में दिया गया है। तत्कालीन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि सुल्तानों व अमीरों के घुड़सालों में श्रेष्ठ नस्लों के घोड़े पर्याप्त मात्रा में थे। घुड़दौड़ के लिए यमन, ओमान और फारस से विशेष अरबी घोड़े आयात किये जाते थे, जिनमें प्रत्येक का मूल्य एक हजार से चार हजार टका तक होता था।[48] घुड़दौड़ के आधार पर बाजी भी लगायी जाती थी। तुर्क सुल्तान व अमीरों ने घुड़सवारी में उच्च कोटि की दक्षता प्राप्त कर ली थी। कुरेत खाँ अपने साथ 2 घोड़े रखता था। एक पर वह स्वयं सवार होता था तथा दूसरे को आगे रवाना कर देता था। घोड़े के तेज दौड़ने के समय वह एक घोड़े की पीठ से कूद कर दूसरे की पीठ पर पहुँच जाता और पुनः कूद कर पहले घोड़े की पीठ पर आ जाता। इस प्रकार वह शीघ्रताशीघ्र बढ़ता ही चला जाता था। [49] कैकुबाद से भेंट करने हेतु आने वाले घुड़सवार के घोड़ा दौड़ाने का ढंग देखकर दर्शकों की आँखें चकाचौंध हो गयी थी।[50]

बलबन काल में सिन्ध प्रदेश से भरची व तातारी चुने घोड़े बड़ी तादाद में आते थे। हिन्दुस्तानी घोड़े शिवालिक प्रदेश, सिलम, सामाना, भटिंडा, चिटवान, इत्यादि से आते थे।युद्धों में लूट के दौरान भी घोड़े प्राप्त किये जाते थे।[51] व्यापारी घोड़े बेचने के लिए नगरों में आते थे। करमपट्टन के पशुओं के बाजार में प्रतिदिन 1.5 हजार घोड़े विक्रय होते थे, जहाँ से वे लखनौती भी भेजे जाते थे।[52]

फख्रे मुदब्बिर ने घोड़ों को राज्य का गौरव व सजावट मानते हुए घोड़ों को दौड़ाना अच्छी विद्या मानी है।[53]

4. **हस्तियुद्ध – मल्लयुद्ध** – राजधानी में बड़ी तादाद में हाथी थे जिन्हें गजशाला में रखा जाता था। शाही गजशालाओं के हाथी शासक का ससम्मान अभिवादन करने के लिए प्रशिक्षित किये जाते थे। कैकुबाद के नये शहर किलोखड़ी में जश्न के दिन ढोल की आवाज, हाथियों के चिंघाड़ने व घोड़ों के दौड़ने का प्रदर्शन किया गया था। गज युद्ध का प्रदर्शन सर्वसाधारण के लिए किया गया था।[54]

कुतुबुद्दीन ऐबक के काल में मुहम्मद बख्तियार खिलजी द्वारा किए गए हस्तियुद्ध का विवरण तबकाते नासिरी में प्राप्त होता है। अमीरों द्वारा सुल्तान द्वारा खिलजी का सम्मानित किये जाने पर ईर्ष्यावश सफेद राजभवन में खिलजी को एक हाथी से युद्ध करने पर विवश कर दिया जिस दौरान खिलजी ने हाथी की सूँड़ पर इतनी जोर से गदा मारी कि वह भाग निकला, किन्तु फिर भी उसने उस हाथी का पीछा किया। इस बहादुरी हेतु ऐबक ने न केवल खिलजी को स्वयं ईनाम दिया, बल्कि वहा पर उपस्थित अपने अमीरों को भी आज्ञा दी कि वे खिलजी को ईनाम दें। जिस पर उसे अनगिनत ईनाम मिले, जिसे खिलजी ने उसी महफिल में बाँट दिया।[55]

युद्ध में विजयी होने पर पराजित पक्ष द्वारा विजयी पक्ष को हाथी भी प्रदान किये जाते थे। हाथी लखनौती एवं बंगाल के राज्य से बलबन के कनिष्ठ पुत्र की रियासत में लाए जाते थे। हाथी उस समय प्रभुत्व एवं संप्रभुता का भी प्रतीक माने जाते थे। बलबन के राज्यारोहण के समय 63 हाथी लखनौती से अमरलां खाँ के पुत्र ततरखाँ ने भिजवाये, जिससे प्रजा बलबन का प्रताप देखकर उसके शक्ति के सम्बन्ध में संतुष्ट हो गयी।[56] इसी के एक सेवक मुहम्मद शीरान खलजी ने नोदिया के राव लखमनिया को हराकर उसके जंगल से 18 से अधिक हाथियों को महावत सहित पकड़ लिया था।[57] खिलजी सरदार गयासुद्दीनखिलजी ने सुल्तान शम्सुद्दीन से की गयी संधि में 38 हाथी एवं अस्सी लाख की धनराषि को देकर सुल्तान के नाम का खुत्बा चलाना स्वीकार किया था।[58]

5. **मल्लयुद्ध** –उस काल में मल्लयुद्ध का भी विवरण प्राप्त होता है। पहलवान राजसभाओं में नियुक्त किये जाते थे, जिन्हें विभिन्न सार्वजनिक अवसरों, उत्सवों में मल्ल युद्ध का प्रदर्शन करना होता था। ये युद्ध में भी प्रतिभाग करते थे। बलबन ने सोख्तानी पहलवानों का वेतन साठ–साठ और सत्तर–सत्तर हजार जीतल निश्चित किया, जो नंगी तलवारें अपने कंधों पर लिये उसके घोड़े के साथ–साथ चलते थे। जिससे बलबन की सवारी के ठाट–बाट एवं वैभव की चकाचौंध दर्षनीय होती थी ।[59]

6. **शतरंज एवं जुआ** – चौसर या शतरंज का उल्लेख मिलता है। सुल्तान के दरबार में जो सर्वगुण सम्पन्न सुन्दर रमणियाँ व नर्तकियाँ होती थीं, वो शतरंज व चौसर खेलने में निपुण होती थी।[60] अपने खान पद के कार्यकाल में बलबन भी जुआ खेलता था तथा जुए में जीती गयी धनराषि को जरूरतमंदों में दान कर देता था।[61] तारीखे फीरोजषाही के विवरण के अनुसार सुल्तान कैकुबाद के रमणियों से शतरंज व चौसर खेलने तथा उन सुन्दरियों के पासा फेंकने के अन्दाज पर मूर्छित व आसक्त होने का विवरण प्राप्त होता है।[62] मुइज्जी राज्य के तीन वर्षों में सजाई जाने वाली महफिलों में मदिरापान, संगीत सुनने, गाना गाने, शतरंज व चौसर खेलने का वर्णन तारीखे फिरोजशाही में बरनी ने किया है।

कैकुबाद के समय की मदिरा की महफिलों में जुआ का भी प्रचलन था। इसके अतिरिक्त जीत–हार की बाजियाँ लगायी जाती थीं।[63]

7. **उद्यानों की सैर** – कुलीन वर्ग के साथ ही आम जनमानस जंगल व उद्यानों (बगीचों) की सैर हेतु भी जाते थे। विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पों आम व अन्य फलों से बाग भरे रहते थे। आजकल की सैर व भोजन की दावतें 'पिकनिक' के समान लोग उद्यानों में भोजन सामग्री, मदिरा, इत्यादि लेकर भी जाते थे।[64] शम्सुद्दीन द्वारा बनाये गये हौज की प्रशंसा करते हुए किरानुस्सादैन में अमीर खुसरों ने लिखा है कि उक्त हौज के बीच में एक भवन निर्मित था तथा उसके चारों ओर लोग पहाड़ी के आँचल में मनोविनोद के लिए शिविर लगाया करते थे।[65] राजप्रासादों व अमीरों के बड़े–बड़े महलों में उद्यानों का विधान अनिवार्यतः किया जाता था। किलोखड़ी महल के एक ओर नदी व एक ओर उद्यान थे। यमुना नदी के कारण उद्यान में सर्वदा ठण्डक रहती थी। बसन्त ऋतु के आगमन के साथ ही उद्यानों में केवड़ा, सेवती, गुलाब, लाल मौलश्री के फूल खिले रहते थे। बुलबुल, तोते, फाख्ते, चकोर इत्यादि क्रीड़ा करने व चहकने लगे।[66]

नौका के द्वारा भी सैर किया जाता था। शिशु चन्द्र के समान दिखने वाली नौका, जिसे साल की लकड़ी से दस वर्ष में बनाया गया था एवं उसके तख्ते एवं अन्य सामग्री उसमें बड़ी सुन्दरता से जड़ी हुई थी, उस लकड़ी के गृह में बैठकर सैर की जाती होगी।[67]

8. **उत्सव** – बलबन द्वारा दरबार में ईरानी नववर्ष 'नौरोज़' त्योहार की शुरूआत की गयी। सल्तनत अन्तर्गत परम्परागत त्योहारों के अतिरिक्त विशेष अवसरों पर बड़े भव्य उत्सवों का आयोजन किया जाता, जिसमें सभी प्रजाजन उत्साहपूर्वक प्रतिभाग करते। समाज का प्रत्येक वर्ग इन उत्सवों में प्रतिभाग कर हर्ष व उल्लास का अनुभव करता था। नगर के अतिरिक्त समीपवर्ती स्थलों

के निवासी भी उक्त उत्सवों को देखा करते थे। इस अवसर पर सम्पूर्ण दरबार एवं नगर को अत्यधिक सजाया जाता था तथा स्थान–स्थान पर 'कुव्वे ' (बड़े स्वागत द्वार) लगाये जाते।[68]

मिनहाज़–उस–सिराज में वर्णन है कि 18 फरवरी, 1229 ई0 को खलीफा के राजदूतों के राजधानी पहुँचने पर उनके द्वारा लायी गयी खिलअतों व उपहारों को इल्तुतमिश ने ग्रहण किया, जिस अवसर पर शहर सजाया गया एवं आनन्द मंगल पूर्ण समारोह आयोजित किया गया।[69]

सुल्तानों के राज्यारोहण के अवसर पर भी बड़े उत्सव आयोजित किये जाते थे। इसके अतिरिक्त सुल्तान एवं सैन्य दल षिकार खेलकर, युद्ध में विजय प्राप्त करने उपरान्त या अन्य किसी महत्वपूर्ण कार्य में सफलता प्राप्त कर वापिस लौटता था, तब उसके स्वागत में उत्सव का आयोजन होता था। नगर में स्थान पर सजावटें की जातीं। स्वागत द्वार (कुव्वे) सजाये जाते एवं, नाच–रंग एवं मदिरापान की महफिलें आयोजित की जाती थी। सभी वर्गों द्वारा इन जष्नों में प्रतिभाग कर आनन्द मनाया जाता था। बलबन के राज्यारोहण के प्रथम वर्ष में ही लखनौती से 63 हाथियों के राजधानी पहुँचने से नगर में कुव्वे (तोरण/स्वागत द्वार) सजाये गये व लोगों ने खुशियाँ मनायीं। इसी प्रकार बलबन द्वारा जूद पर्वत की विजय उपरान्त सफलतापूर्वक जीत कर वापिस राजधानी लौटने पर कुव्वे सजाए, खुशियाँ मनायीं व प्रजा को निसारे छत्र (छत्र का न्योछावर) प्रदान किया गया।[70]

अपने पुत्र महमूद से मुलाकात के 3 वर्ष उपरात जब बलबन अपनी सेना के साथ वापिस राजधानी लौटा, तब भी बड़े सुन्दर कुव्वे सजाये गये थे। मार्ग में भी जिस मार्ग खित्ते (प्रदेश) या कस्बे से बलबन गुजरता, वहीं खुशियाँ मनायी जाती व स्थानीय काजी, आलिम, मशायख, गणमान्य, प्रतिष्ठित लोग, चौधरी, मुकद्दम इत्यादि विजय की बधाई देने आते एवं बादषाह को उपहार व तोहफे देते तथा बादषाह से खिलअत प्राप्त करते। दिल्ली के प्रत्येक घर में उनके सैन्य दल में नियुक्त सम्बन्धियों के पहुँचने के कारण खुशियाँ मनाई जाने लगी , गीत संगीत एवं दावतों के जष्न आयोजित किये गये एवं न्यौछावर की रस्में की गयीं।[71]

तारीखे फिरोजशाही में वर्णित किया गया है कि कैकुबाद अपने पिता नासिरूद्दीन से मिलने के उपरान्त जब दिल्ली को वापिस आ रहा था तब दिल्ली में कुव्वे सजाये गये, जिनमें संगीत व नृत्य हेतु नये व पुराने गायक व नर्तकियाँ पहुँच गयी। इन कुव्वों से मदिरा वितरित की जाती थी। महीनों तक नगर निवासी उन कुव्वों की भोग विलास की सामग्री में डूबे रहे थे।

**9. अन्य मनोरंजन** – तद्समय नागरिकों द्वारा अपनी–अपनी सुलभता व हैसियत के अनुरूप कई अन्य आमोद–प्रमोद के साधन व्यवहृत किये जाते थे। चुटकुले सुनाना, विदूषक[72] मुक्केबाजी एवं पत्थर उठाना, आदाबुल हर्ब, गोफन से पत्थर फेंकना , जोर आजमायष करना [73] भाला चलाना, गेंद खेलना[74] जिसमें अलाउद्दीन किशली खाँ अत्यधिक सिद्धहस्त एवं प्रसिद्ध था,[75] इत्यादि प्रमुख मनोरंजन थे, जिन्हें युद्धाभ्यास हेतु भी उपयोगी माना जाता था ।

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है गुलाम राजवंश कालीन भारतीय समाज के दैनिक जीवन में मनोरंजन के अनेक साधन प्रचलित थे जिनका अपनी रूचि एवं क्षमता के आधार पर नागरिक आनंद उठाते थे।

## संदर्भ ग्रन्थ

1.रिज़वी,सैयद अतहर अब्बास, अनुवादक तुगलक कालीन भारत भाग–2 (1351–1368 ई0). हिस्ट्री .डिपार्टमेण्ट,अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी.अलीगढ़ 1954. पृष्ठ सं. 324;
2.हबीबुल्लाह, ए0बी0एम0. द फाउण्डेशन ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया.सेन्ट्रल बुक डिपो. इलाहाबाद, 1970 पृष्ठ सं. 253;
3.अशरफ, मोहम्मद कृत लाइफ एण्ड कण्डीशन ऑफ पीपल ऑफ राजस्थान, अनुवादक के.एस. लाल. भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय.नई दिल्ली.1969 पृष्ठ सं. 38;
4.रिज़वी,सैयद अतहर अब्बास, अनुवादक आदि तुर्क कालीन भारत, अनुवादक सैयद अतहर अब्बास रिज़वी हिस्ट्री डिपार्टमेण्ट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी.अलीगढ़ 1956 पृष्ठ सं. 28;
5.वही ,पृष्ठ सं. 38;
6.वही ,पृष्ठ सं. 41;
7.जियाउद्दीन बरनी कृत तारीख–ए–फिरोजशाही.हिन्दी अनुवाद डॉ0 रहमान, मुसव्विर.रामपुर रजा लाइब्रेरी, रामपुर. 2015 पृष्ठ सं. 108;
8. आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 146;
9.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 156;

10.तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 122;
11.वही ,पृष्ठ सं. 184;
12.बोहरा, प्रो0 राधेश्याम. सल्तनत कालीन सामाजिक व आर्थिक इतिहास.पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, इलाहाबाद. 1987 ;पृष्ठ सं. 242 ;तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 191;आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 202–203;
13.प्रो0 राधेष्याम, पृष्ठ सं. 242;
14.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 262;
15.मेमोरियल वॉल्यूम अमीर खुसरव.पब्लिकेशन डिवीज़न, मिनिस्ट्री ऑफ इंफॉर्मेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया. नई दिल्ली.2006.पृष्ठ सं. 331 ;आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 171;
16.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 172;
17.वही, पृष्ठ सं. 214.;तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 210; हबीबुल्लाह, पृष्ठ सं. 157;
18.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 214;
19.;तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 210; आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 215;
20.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 215; हबीबुल्लाह, पृष्ठ सं. 157;
21.प्रो0 राधेष्याम, पृष्ठ सं. 242;आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 235;
22.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 294–295;
23.वही, पृष्ठ सं. 233;
24.तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 243–244; आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 236–238;
25.तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 245; आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 238;
26.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 255;
27.वही, पृष्ठ सं. 285;
28.वही, पृष्ठ सं. 296;
29.हबीबुल्लाह, पृष्ठ सं. 251;
30.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 172;
31.तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 172; आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 301;
32.अशरफ, मोहम्मद कृत लाइफ एण्ड कण्डीशन ऑफ पीपल ऑफ राजस्थान पृष्ठ सं. 233;
33.तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 132; आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 162–163;
34.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 24;
35.प्रो0 राधेष्याम, पृष्ठ सं. 236;
36.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 64;
37.वही, पृष्ठ सं. 43;
38.वही, पृष्ठ सं. 69;
39.तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 130; आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 162 ;प्रो0 राधेष्याम, पृष्ठ सं. 236;
40.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 162;
41.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 162;तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 131
42.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 87;
43.वही ,पृष्ठ सं. 257;
44.हबीबुल्लाह, पृष्ठ सं. 257;
45.अशरफ, मोहम्मद पृष्ठ सं. 231;
46.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 300;
47.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 8;
48.अशरफ, मोहम्मद पृष्ठ सं. 232;
49.आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 69;

50.वही, पृष्ठ सं. 233;
51.वही, पृष्ठ सं. 233;
52.वही पृष्ठ सं. 11, 85;
53.वही, पृष्ठ सं. 258;
54.वही, पृष्ठ सं. 96;
55.वही, पृष्ठ सं. 12;
56.वही, पृष्ठ सं. 161;
57.वही, पृष्ठ सं. 17;
58.वही, पृष्ठ सं. 20;
59.वही, पृष्ठ सं. 272,144–145;
60. वही, पृष्ठ सं. 235;
61. वही, पृष्ठ सं. 156;
62 वही, पृष्ठ सं. 236;
63. वही, पृष्ठ सं. 215;
64. वही, पृष्ठ सं. 303;
65. वही, पृष्ठ सं. 286;
66. वही, पृष्ठ सं. 289;
67. वही, पृष्ठ सं. 294;
68. वही, पृष्ठ सं. 161;
69. वही, पृष्ठ सं. 27;
70. वही, पृष्ठ सं. 166;
71. वही, पृष्ठ सं. 198;
72. तारीख–ए–फिरोजशाही, पृष्ठ सं. 232;
73. आदि तुर्क कालीन भारत पृष्ठ सं. 272;
74 वही, पृष्ठ सं. 234;
75. वही, पृष्ठ सं. 202.